अपभ्रंश के महाकवि स्वयम्भू : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

महाकवि स्वयंभूदेव का अपभ्रंश साहित्य के कवियों में महत्त्वपूर्ण अवदान है। पुष्पदन्त ने उन्हें व्यास, भास, कालिदास, भारवी और बाण के समकक्ष कवि माना है। वे 'महाकवि', 'कविराज', 'कवि चक्रवर्ती' जैसी उपाधियों से सम्मानित थे। यद्यपि स्वयंभू की तीन महत्त्वपूर्ण कृतियाँ आज भी अविकल रूप से उपलब्ध हैं, फिर भी उनसे उनके जीवन के सम्बन्ध में बहुत कम जानकारी उपलब्ध होती है। उनकी इन कृतियों में उनके जन्म-स्थान, कुल, परम्परा, समय आदि के सम्बन्ध में बहुत कम सूचनाएँ प्राप्त हैं। जहाँ तक स्वयंभू के पारिवारिक जीवन का प्रश्न है, हमें मात्र इतनी ही जानकारी प्राप्त है कि उनके पुत्रों में एक पुत्र का नाम त्रिभुवनस्वयंभू था, जिसने अपने पिता की अधूरी कृति को पूर्ण किया था। इसके साथ ही स्वयंभू की कृतियों में उनके पिता मारुतदेव और माता पद्मनी उल्लेख मिलता है। उन्होंने यह भी कहा है कि उनकी माता पद्मनी पद्म के समान ही सुन्दर थीं। इन सामान्य सूचनाओं के अतिरिक्त उनकी वंश परम्परा आदि की विस्तृत जानकारी अप्राप्त है। स्वयंभू की दो पत्नियाँ थीं एक अमृताम्बा और दूसरी आदित्याम्बा। पण्डित नाथूराम प्रेमी ने उनकी तीसरी पत्नी सुअम्बा का भी अनुमान किया है, जो सम्भवतः उनके पुत्र त्रिभुवनस्वयंभू की माता थीं।

स्वयंभू का काल

जहाँ तक स्वयंभू के समय का प्रश्न है उनकी कृतियों में कहीं भी रचनाकाल का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है फिर भी उन्होंने अपनी कृतियों में बाण, श्रीहर्ष, रविषेण आदि का स्मरण किया गया है, इससे कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। रविषेण के पद्मचरित्र का रचनाकाल ई० सन् ६७७ माना जाता है। अतः इतना निश्चित है कि स्वयंभू ई० सन् ६७७ के पश्चात् ही हुए हैं। पुनः पुष्पदन्त ने अपने महापुराण में अपने पूर्ववर्ती कवियों में स्वयंभू का उल्लेख किया है। पुष्पदन्त के महापुराण का रचनाकाल ई० सन् ९६० है। अतः इतना निश्चित होता है कि स्वयंभू ई० सन् ६७७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से ९६० के बीच कभी हुए हैं। स्वयंभू द्वारा रविषेण का उल्लेख तथा जिनसेन का अनुल्लेख यह भी सूचित करता है कि वे जिनसेन के कुछ पूर्व ही हुए होंगे। जिनसेन के हरिवंशपुराण का रचनाकाल ई० सन् ७८३ माना जाता है, अतः स्वयंभू का समय ई० सन् ६७७ से ई० सन् ७८३ के मध्य भी माना जा सकता है। यद्यपि यह एक अभावात्मक साक्ष्य है इसीलिए प्रो० भयाणी इसे मान्य नहीं करते हैं। सम्भवतः उनके इस कथन का आधार स्वयम्भू द्वारा राष्ट्रकूट राजा ध्रुव के सामन्त धनञ्जय का अपने आश्रयदाता के रूप में उल्लेख है। उन्होंने पउमचरिउ के विद्याधर काण्ड में स्वयं ही यह उल्लेख किया है उन्होंने ध्रुव के हेतु इसकी रचना की। इतिहासकारों ने राष्ट्रकूट राजा ध्रुव का काल ई० सन् ७८० से ७९४ माना है। स्वयम्भू इनके समकालीन रहे होंगे। स्वयम्भू द्वारा अपनी कृतियों में काण्डों की समाप्ति में वारों, नक्षत्रों आदि का उल्लेख तो किया गया है। किन्तु दुर्भाग्य से संवत् का उल्लेख कहीं नहीं है। इनके अनुसार पिल्लाई पञ्चाङ्ग के आधार पर प्रो० भयाणी ने यह माना कि युद्धकाण्ड ३१ मई, ७१७ को समाप्त हुआ होगा। किन्तु यह मात्र अनुमान ही है, क्योंकि यहाँ संवत् के स्पष्ट उल्लेख का अभाव है। फिर भी इतना तो सुनिश्चित है कि स्वयम्भू ई० सन् की ८ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध एवं नवीं शताब्दी के पूर्वार्ध अर्थात् ई० सन् ७५१ से ८५० के बीच कभी हुए हैं।

स्वयंभू का सम्प्रदाय

जहाँ तक स्वयम्भू की धर्म परम्परा का प्रश्न है यह स्पष्ट है कि वे जैन परम्परा में हुए हैं यद्यपि उनके पुत्रादि के नामों को देखकर ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि उनके कुल का सम्बन्ध शैव या वैष्णव परम्परा से रहा होगा। किन्तु मेरी दृष्टि में यह कल्पना इसलिए समीचीन नहीं लगती है कि यदि वे शैव या वैष्णव परम्परा में हुए होते तो निश्चित ही वाल्मीकि की रामकथा का अनुसरण करते न कि विमलसूरि या रविषेण की रामकथा का। पुनः उनके द्वारा रिट्ठनेमिचरिउ आदि की रचना से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका सम्बन्ध जैन परम्परा से रहा होगा। इसका स्पष्ट प्रमाण यह है कि पुष्पदन्त के महापुराण के संस्कृत टिप्पण में उन्हें स्पष्टतया आपलीयसंघीय (यापनीयसंघीय) कहा गया है। डॉ० किरण सीपानी ने उनके व्यक्तित्व आदि के सम्बन्ध में विस्तृत चर्चा करते हुए स्वयम्भू की धार्मिकसहिष्णुता एवं वैचारिक उदारता के आधार पर जो यह निष्कर्ष निकाला है कि वे कट्टरतावादी दिगम्बर सम्प्रदाय की अपेक्षा जैन धर्म के समन्वयवादी यापनीय सम्प्रदाय से सम्बन्धित रहे होंगे, उचित तो है। फिर भी मेरी दृष्टि में स्वयम्भू का मात्र सहिष्णु और उदारवादी होना ही उनके यापनीय होने का प्रमाण नहीं है, इसके अतिरिक्त भी ऐसे अनेक प्रमाण हैं जिसके आधार पर उन्हें यापनीय सम्प्रदाय का माना जा सकता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. स्वयम्भू ने भी अपने रामकथा के स्रोत की चर्चा करते हुए रविषेण की परम्परा का अनुसरण किया है। वे भी इस कथा को महावीर, इन्द्रभूति, सुधर्मा, प्रभव, कीर्ति तथा रविषेण से प्राप्त बताते हैं। अपने कथास्रोत में प्रभव आदि का उल्लेख यही सिद्ध करता है कि वे यापनीय परम्परा से सम्बद्ध रहे होंगे क्योंकि दिगम्बर परम्परा में प्रभव का उल्लेख नहीं हैं।

२. उनकी रामकथा में भी विमलसूरि के 'पउमचरिय' तथा रविषेण के 'पद्मचरित' का अनुसरण हुआ है। उन्होंने दिगम्बर परम्परा में प्रचलित गुणभद्र की रामकथा का अनुसरण नहीं किया है। इससे भी यही सिद्ध होता है कि उनकी कथाधारा दिगम्बर परम्परा की कथा-धारा से भिन्न है। यदि रविषेण यापनीय हैं तो उनकी कथा-धारा का अनुसरण करने वाले स्वयंभू भी यापनीय ही सिद्ध होते हैं।[१]

३. यद्यपि स्वयंभू ने स्पष्ट रूप से अपने सम्प्रदाय का उल्लेख ही नहीं किया है, किन्तु पुष्पदन्त के महापुराण के टिप्पण में उन्हें आपलीय संघीय बताया गया है।[२] इसी आधार पर पण्डित नाथूराम जी प्रेमी ने भी उन्हें यापनीय माना है।[३]

४. स्वयम्भू द्वारा दिवायर (दिवाकर), गुणहर (गुणधर), विमल (विमलसूरि) आदि अन्य परम्परा के कवियों का आदरपूर्वक उल्लेख भी उनके यापनीय परम्परा से सम्बद्ध होने का प्रमाण इसीलिए माना जाना चाहिए कि ऐसी उदारता यापनीय परम्परा में देखी जाती है, दिगम्बर परम्परा में नहीं।

५. स्वयम्भू के ग्रन्थों में अन्यतैर्थिक की मुक्ति की अवधारणा को स्वीकार किया गया है। अन्यतैर्थिक की मुक्ति की अवधारणा आगमिक है और आगमों को मान्य करने के कारण यह अवधारणा श्वेताम्बर और यापनीय दोनों में स्वीकृत रही है। उत्तराध्ययन, जिसमें स्पष्ट रूप से अन्यलिंग सिद्ध का उल्लेख है, यापनीयों को भी मान्य रहा है। प्रोफेसर एच० सी० भायाणी का मन्तव्य भी उन्हें यापनीय मानने के पक्ष में है। वे लिखते हैं कि यद्यपि इस सन्दर्भ में हमें स्वयंभू की ओर से प्रत्यक्ष या परोक्ष कोई वक्तव्य नहीं मिलता है, परन्तु यापनीय सग्रन्थ अवस्था तथा परशासन से भी मुक्ति स्वीकार करते थे और स्वयम्भू ने भी अपनी कृतियों में ऐसे उल्लेख किये हैं, पुनः वे अपेक्षाकृत अधिक उदारचेता थे, अतः उन्हें यापनीय माना जा सकता है।

६. एक ओर अचेलकत्व पर बल और दूसरी ओर श्वेताम्बर मान्य आगमों में उल्लिखित अनेक तथ्यों की स्वीकृति उन्हें यापनीय परम्परा से ही सम्बद्ध करती है। श्रीमती कुसुम पटोरिया भी इसी निष्कर्ष पर पहुँचती हैं। वे लिखती हैं कि महाकवि पुष्पदन्त के महापुराण के टीकाकार ने जिस परम्परा के आधार पर इन्हें आपलीसंघीय कहा है वह परम्परा वास्तविक होनी चाहिए। साथ ही अनेक अन्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तथ्यों से भी इनके यापनीय होने का समर्थन होता है।

इनके अतिरिक्त भी डॉ० कुसुम पटोरिया ने स्वयम्भू के ग्रन्थों के अध्ययन के आधार पर अन्य कुछ ऐसे प्रमाण प्रस्तुत किये हैं, जिससे वे कुछ मान्यताओं के सन्दर्भ में दिगम्बर परम्परा से भिन्न एवं यापनीय प्रतीत होते हैं।

१. दिगम्बर परम्परा के तिलोयपण्णत्ती, त्रिलोकसार और उत्तरपुराण में राम (बलराम) को आठवाँ और पद्म (रामचन्द्र) को नौवाँ बलदेव बताया गया है। जबकि श्वेताम्बर ग्रन्थों यथा समवायांग, पउमचरियं, त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित, अभिधानचिन्तामणि, विचारसारप्रकरण आदि में पद्म (राम) को आठवाँ और बलराम को नवाँ बलदेव कहा गया है। राम का पद्म नाम दिगम्बर परम्परानुसारी नहीं है, राम का पद्म नाम मानने के कारण रविषेण और स्वयंभू दोनों यापनीय प्रतीत होते हैं।

२. देवकी के तीन युगलों के रूप में छह पुत्र कृष्ण के जन्म के पूर्व हुए थे, जिन्हें हरिणेगमेसी देव ने सुलसा गाथापत्नी के पास स्थानान्तरित कर दिया था। स्वयम्भू के रिट्ठनेमिचरिउ का यह कथानक श्वेताम्बर आगम अंतकृतदशा में यथावत् उपलब्ध होता है। स्वयंभू द्वारा आगम का यह अनुसरण उन्हें यापनीय सिद्ध करता है।

३. स्वयम्भू ने पउमचरिउ में देवों की भोजनचर्या के सम्बन्ध में उल्लेख किया है कि गन्धर्व पूर्वाह्न में, देव मध्याह्न में, पिता-पितामह (पितृलोक के देव) अपराह्न में और राक्षस, भूत, पिशाच एवं ग्रह रात्रि में खाते हैं, जबकि दिगम्बर परम्परा के अनुसार देवता कवलाहारी नहीं है, उनके अनुसार देवताओं का मानसिक आहार होता हैं (देवेसु मणाहारी)।

४. इन्होंने कथास्रोत का उल्लेख करते हुए क्रम से महावीर, गौतम, सुधर्म, प्रभव, कीर्ति और रविषेण का उल्लेख किया है। प्रभव को स्थान देना उन्हें दिगम्बर परम्परा से पृथक् करता है क्योंकि दिगम्बर परम्परा में इनके स्थान पर विष्णु का उल्लेख मिलता है। यद्यपि इनके रिट्ठनेमिचरिउ के अन्त में जम्बू के बाद विष्णु नाम आया है, किन्तु यह अंश जसकीर्ति द्वारा प्रक्षिप्त है।

५. स्वयम्भू ने सीता के जीव का रावण एवं लक्ष्मण को प्रतिबोध देने सोलहवें स्वर्ग से तीसरी पृथ्वी में जाना बताया है। जबकि धवला टीका के अनुसार १२ वें से १६ वें स्वर्ग तक के देवता प्रथम पृथ्वी के चित्रा भाग से आगे नहीं जाते हैं।

६. पउमचरिउ में अजितनाथ के वैराग्य का कारण म्लानकमल बताया गया है, जबकि त्रिलोकप्रज्ञप्ति में तारा टूटना बताया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

७. रविषेण के समान इन्होंने भी महावीर के चरणांगुष्ठ से मेरु के कम्पन का उल्लेख किया है। यह श्वेताम्बर मान्यता है।

८. भगवान् के चलने पर देवनिर्मित कमलों का रखा जाना-भगवान् का एक अतिशय माना गया है। यह भी श्वेताम्बर मान्यता है।

९. तीर्थंकर का मागधी भाषा में उपदेश देना। ज्ञातव्य है कि श्वेताम्बर मान्य आगम समवायांग में यह मान्यता है। दिगम्बर परम्परा के अनुसार तो तीर्थंकर की दिव्यध्वनि खिरती है, जो सर्व भाषा रूप होती है।

१०. दिगम्बर उत्तरपुराण में सगरपुत्रों का मोक्षगमन वर्णित है जबकि विमलसूरि के पउमचरियं के आधार पर रविषेण और स्वयम्भू ने भीम एवं भागीरथ को छोड़कर शेष का नागकुमार देव के कोप से भस्म होना बताया।

सुश्री कुसुम पटोरिया के अनुसार इन वर्णनों के आधार पर स्वयम्भू यापनीय सिद्ध होते हैं।

इस प्रकार इन सभी उल्लेखों में स्वयम्भू की श्वेताम्बर मान्यता ये निकटता और दिगम्बर मान्यताओं ये भिन्नता यही सिद्ध करती है कि वे यापनीय परम्परा से सम्बद्ध रहे होंगे।

पुनः स्वयम्भू मुनि नहीं, अपितु गृहस्थ ही थे, उनकी कृति 'पउमचरिउ' से जो सूचनाएँ हमें उपलब्ध होती हैं, उनके आधार पर उन्हें यापनीय परम्परा से सम्बन्धित माना जा सकता है।

स्वयम्भू का निवास स्थल सम्भवतः पश्चिमोत्तर कर्नाटक रहा है।[४] अभिलेखीय साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि उस क्षेत्र पर यापनीयों का सर्वाधिक प्रभाव था। अतः स्वयम्भू के यापनीय संघ से सम्बन्धित होने की पुष्टि क्षेत्रीय दृष्टि से भी हो जाती है।

काल की दृष्टि से स्वयम्भू ७ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध और ८ वीं शती के पूर्वार्ध के कवि हैं।[५] यह स्पष्ट है कि इस काल में यापनीय संघ दक्षिण में न केवल प्रवेश कर चुका था, अपितु वहाँ प्रभावशाली भी बन गया था। अतः काल की दृष्टि से भी स्वयम्भू को यापनीय परम्परा से सम्बन्धित मानने में कोई बाधा नहीं आती है।

साहित्यिक प्रमाण की दृष्टि से पुष्पदन्त के महापुराण की टीका में स्वयम्भू को स्पष्ट रूप से यापनीय (आपुली) बताया गया है। उसमें लिखा है- 'सयंभू पत्थड़िबद्ध कर्ता आपलीसंघीयः' इस कथन से यह निष्कर्ष निकलता है कि वे यापनीय संघ से सम्बन्धित थे।[६]

स्वयम्भू के यापनीय संघ से सम्बन्ध होने के लिए प्रो० भयाणी ने एक और महत्वपूर्ण प्रमाण यह दिया है कि यापनीय संघ वैचारिक दृष्टि से उदार और समन्वयवादी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

था। यह धार्मिक उदारता और समन्वयशीलता स्वयम्भू के ग्रन्थों में विभिन्न स्थलों पर पाई जाती है। 'रिट्ठनेमिचरिउ' संधि ५५/३० और 'पउमचरिउ' संधि ४३/१९ में उनकी यह उदारता स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। उनकी उदारता को सूचित करने के लिए हम यहाँ केवल एक ही गाथा दे रहे हैं—

अरहन्तु बुद्धु तुहुँ हरिहरन व, तुहुँ अण्णाण तमोहरिउ।
तुहुँ सुहुमु णिरन्जणु परमपउ, तुहुँ रविदम्भु सयम्भु सिउ।।

दिगम्बर परम्परा धार्मिक दृष्टि से श्वेताम्बरों और यापनीयों की अपेक्षा अनुदार रही है, क्योंकि वह अन्यतैथिक मुक्ति को अस्वीकार करती है, जबकि श्वेताम्बर और यापनीय अन्यतैर्थिक की मुक्ति को स्वीकार करते हैं। स्वयम्भू की इस धार्मिक उदारता की विस्तृत चर्चा प्रो० भयाणी जी ने पउमचरिउ की भूमिका में की है। पाठक उसे वहाँ देख सकते है।[७] डॉ० किरण सिपानी ने भी अपनी कृति में इस उदारता का उल्लेख किया है।

स्वयम्भू की रामकथा और उसका मूलस्त्रोत

महाकवि स्वयम्भू के पउमचरिउ का अपभ्रंश साहित्य में वही स्थान है जो हिन्दी साहित्य में तुलसी की रामकथा का है। पउमचरिउ अपभ्रंश में रचित जैन रामकथा का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। यह विमलसूरि के पउमचरियं और रविषेण के 'पद्मचरितं' पर आधारित है। यह ५ काण्डों और ९० संधियों में विभाजित है इसके विद्याधरकाण्ड में २० संधियाँ, अयोध्याकाण्ड में २२ संधियाँ, सुन्दरकाण्ड में १४ संधियाँ, युद्धकाण्ड में २१ संधियाँ और उत्तरकाण्ड में १३ संधियाँ हैं। इसकी इन ९० संधियों में ८२ संधियों की रचना स्वयं स्वयम्भू ने की थी। अन्तिम ७ संधियों की रचना उनके पुत्र त्रिभुवन ने की थी। ८३वीं सन्धि आंशिक रूप से दोनों की संयुक्त रचना प्रतीत होती है। ज्ञातव्य है कि स्वयम्भू ने राम और कृष्ण दोनों ही महापुरुषों के चरित्रों को लेकर अपभ्रंश भाषा में अपनी रचनाएँ कीं। उन्होंने जहाँ रिट्ठनेमिचरिउ अपरनाम हरिवंशपुराण में २२वें तीर्थंकर अरिष्ठनेमि के साथ-साथ कृष्ण तथा कौरव पाण्डव की कथा का विवेचन किया है, वहीं पउमचरिउ में रामकथा का। उनकी रामकथा का आधार विमलसूरि का पउमचरियं रहा है। जैन रामकथा में पउमचरियं का वही स्थान है जो हिन्दू रामकथा में वाल्मीकि रामायण का है। वस्तुत: रामकथा साहित्य में वाल्मिकी की रामायण के पश्चात् यदि कोई ग्रन्थ है, तो वह विमलसूरि का पउमचरियं (ईसा की दूसरी, तीसरी शती) है। जैनों ने राम (पद्म) को अपने ६३ शलाका पुरुषों में महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है। जैनों में रामकथा की दो धाराएँ प्रचलित रही है एक धारा गुणभद्र के उत्तरपुराण की है, जिसका मूलस्त्रोत संघदासगणि की वसुदेवहिण्डी में मिलता है, तो दूसरी धारा का आधार विमलसूरि का पउमचरियं है। जैन आचार्यों ने जिन-जिन भाषाओं को अपनी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रचनाओं का आधार बनाया प्राय: उन सभी में रामकथा पर ग्रन्थ लिखे गये। प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, कन्नड़, मरुगुर्जर और हिन्दी-इन सभी भाषाओं में हमें जैन रामकथा से सम्बन्धित ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। रामकथा को लेकर सर्वप्रथम विमलसूरि ने प्राकृत में पउमचरियं की रचना की थी। उसी पउमचरियं को ही आधार बनाकर रविषेण ने संस्कृत भाषा में पद्मपुराण या पद्मचरित की रचना की। वस्तुत: रविषेण का पद्मपुराण विमलसूरि के पउमचरियं का संस्कृत रूपान्तरण ही कहा जा सकता है। पुन: स्वयंभू ने विमलसूरि के पउमचरियं और रविषेण के पद्मपुराण के आधार पर ही अपभ्रंश भाषा में अपने पउमचरिउ की रचना की।

डॉ० किरण सिपानी ने अपनी कृति 'पउमचरिउ का काव्यशास्त्रीय अध्ययन' में लिखा है कि जैनों के श्वेताम्बर सम्प्रदाय में केवल विमलसूरि की (रामकथा प्रचलित है) परन्तु दिगम्बर सम्प्रदाय में विमलसूरि एवं गुणभद्र दोनों की परम्पराओं का अनुसरण किया गया है। मेरी दृष्टि में उनके इस कथन में संशोधन की अपेक्षा है। श्वेताम्बर परम्परा में भी हमें रामकथा की दोनों धाराओं के संकेत मिलते हैं। उसमें संघदासगणि की वसुदेवहिण्डी में रामकथा की उस धारा का मूलस्त्रोत निहित है जिसे गुणभद्र ने अपने उत्तरपुराण में लिखा है। पुन: डॉ० सिपानी का यह कथन तो ठीक है कि दिगम्बर परम्परा में विमलसूरि और गुणभद्र दोनों ही कथाधाराएँ प्रचलित रही हैं। किन्तु इस सम्बन्ध में भी एक संशोधन अपेक्षित है।वस्तुत: निर्ग्रन्थ संघ की अचेल (दिगम्बर) परम्परा की दो धाराएँ रही हैं, एक उत्तरभारत की यापनीय धारा और दूसरी दक्षिण भारत की दिगम्बर धारा। वस्तुत: विमलसूरि की रामकथा का अनुसरण इसी यापनीय परम्परा ने किया है और यही कारण है कि रविषेण के पद्मपुराण और स्वयम्भू के पउमचरिउ में अनेक ऐसे संकेत उपलब्ध हैं, जो दिगम्बर परम्पराओं की मूलभूत मान्यता के विपरीत हैं। रविषेण और स्वयंभू ने विमलसूरि की रामकथा का अनुसरण किया उसका मुख्य कारण यह है कि ये दोनों ही यापनीय परम्परा से सम्बन्धित हैं। स्वयम्भू के सम्प्रदाय के सम्बन्ध में पुष्पदन्त के महापुराण के टिप्पण में स्पष्ट निर्देश है कि वे यापनीय संघ के थे। इसकी विस्तृत चर्चा हम पूर्व में स्वयम्भू के सम्प्रदाय के सुम्बन्ध में कर चुके हैं।

स्वयम्भू का व्यक्तित्व

पउमचरिउ के रचनाकार स्वयम्भू के व्यक्तित्व के सम्बन्ध में पं० नाथूराम प्रेमी, डॉ० भयाणी, डॉ० कोछड़, डॉ० देवेन्द्र कुमार जैन, डॉ० नगेन्द्र एवं श्री सत्यदेव चौधरी आदि अनेक विद्वानों ने चर्चा की है। डॉ० किरण सिपानी ने भी उस पर विस्तार से प्रकाश डाला है, मात्र यही नहीं उन्होंने कुछ स्थलों पर इन विद्वानों के विवेचन से अपना मतवैभिन्य भी प्रकट किया है। उदाहरण के रूप में वे पविरलदन्ते का अर्थ विरल दांत वाले न करके सघन दांत वाले करती हैं। पविरल में उन्होंने 'प' के स्थान पर 'अ' की योजना की है यद्यपि प्राचीन नागरी लिपि में 'प' और 'अ' के लिखने में थोड़ा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सा ही अन्तर है यथा प-(प), अ-(अ)। यह सम्भव है कि किसी लेहिए की भूल के कारण आगे "अ" के स्थान पर "प" का प्रचलन हो गया हो किन्तु जब तक अन्य कृतियों से इस पाठ भेद की पुष्टि न हो जाती हो तब तक "प" के स्थान पर "अ" की कल्पना कर लेना उचित नहीं है। यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि स्वयम्भू आजीवन गृहस्थ ही रहे मुनि नहीं बने फिर भी उनका ज्ञान गाम्भीर्य, विद्वत्ता, धार्मिक सहिष्णुता और उदारता आदि ऐसे गुण हैं जो उन्हें एक विशिष्ट पुरुष की श्रेणी में लाकर खड़ा कर देते हैं।

जहाँ तक स्वयम्भू के व्यक्तित्व का प्रश्न है वे आत्मश्लाघा एवं चाटुकारिता से दूर रहने वाले कवि हैं। ये ही कारण हैं कि उन्होंने स्वत: अपनी विशेषताओं का कोई परिचय नहीं दिया यहाँ तक कि उन्होंने अपने आश्रयदाता राष्ट्रकूट राजा ध्रुव और उनके सामन्त धनञ्जय की भी कोई स्तुति नहीं की। यद्यपि वे उनके प्रति कृतज्ञता का ज्ञापन अवश्य करते हैं और अपने को उनका आश्रित बताते हैं मात्र यही नहीं, उन्होंने अपनी दोनों पत्नियों-अमृताम्बा और आदित्याम्बा के प्रति भी अपनी कृतज्ञता ज्ञापित की है। उनमें विनम्रता अपनी चरम बिन्दु पर परिलक्षित होता है। वे अपने आप को अज्ञानी और कुकवि तक भी कह देते हैं। उन्होंने इस तथ्य को भी स्पष्ट किया है कि यह साहित्य साधना वे पाण्डित्य प्रदर्शन के लिए न करके मात्र आत्म अभिव्यक्ति की भावना से कर रहे हैं। यही कारण है कि उनकी रचनाओं में कृत्रिमता न होकर एक सहजता है।

यद्यपि उनमें पाण्डित्य प्रदर्शन की कोई एक भावना नहीं है फिर भी उनके काव्य में सरसता और जीवन्तता है। यद्यपि वे आजीवन गृहस्थ ही रहे फिर भी उनकी रचनाओं में जो आध्यात्मिक ललक है वह उन्हें गृहस्थ होकर भी सन्त के रूप में प्रतिष्ठित करती है। वस्तुत: उनके काव्य में जो सहज आत्मभिव्यक्ति है उसी ने उन्हें एक महान् कवि बना दिया है। महापण्डित राहुल सांस्कृत्यायन ने उन्हें हिन्दी कविता के प्रथम युग का सबसे बड़ा कवि माना है। वे भारत के गिने-चुने कवियों में एक हैं।

स्वयम्भू की रचनाएँ

स्वयम्भू की ज्ञात रचनाएँ निम्न ६ हैं— (१) पउमचरिउ, (२) स्वयम्भू छन्द, (३) रिट्ठनेमिचरिउ, (४) सुव्वचरिउ, (५) सिरिपञ्चमीचरिउ, (६) अपभ्रंश व्याकरण।

इनमें प्रथम दो प्रकाशित हो चुके हैं, तीसरा भी प्रकाशन की प्रक्रिया में है किन्तु शेष तीन अभी तक अनुपलब्ध हैं। इनके सम्बन्ध में अभी कुछ कहना कठिन है। किन्तु आशा की जा सकती है कि भविष्य में किसी न किसी ग्रन्थ भण्डार में इनकी प्रतियाँ उपलब्ध हो सकेगीं। उनके व्यक्तित्व के वैशिष्ट्य के सम्बन्ध में डॉ० किरण सिपानी ने विस्तृत चर्चा और समीचीन समीक्षा भी प्रस्तुत है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सन्दर्भ

१. एह रामकह-सरि सोहन्ती। गणहरदेवहिं दिट्ठ वहन्ती।
पच्छह इन्दभूह आयरिएं। पुणु धम्मेण गुणालंकरिएं।।
पुगु पहवें संसाराराएं। कित्तिहरेणं अणुत्तरवाएं।
पुणु रविसेणायरिय-पसाएं। बुद्धिएं अवगाहिय कइराएं। — पउमचरिउं १/६-९।

२. संयभू पदडीबद्धकर्त्ता आपलीसंघीय। — **महापुराण** (टिप्पणयुक्त) पृष्ठ ९।

३. **जैन साहित्य और इतिहास**, पृष्ठ १९७।

४. **पउमचरिउं**, सं०-डॉ० हरिवल्लभ भयाणी, सिंघी जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक ३४, भूमिका (अंग्रेजी), पृ० १३।

५. वही, पृ० ९।

६. स्वयंभू पावंडीबद्ध रामायण कर्ता आपीसंघीय। — **महापुराण**, १/९/५टिप्पण।

७. पउमचरिउं, सं०डॉ० हरिवल्लभ भयाणी, भूमिका (अंग्रेजी) पृ० १३-१५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org